CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१

तत्वार्थसूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकीर्णक-पुस्तकमालाका तृतीय पुष्प

सं. ४६

प्रभाचन्द्रका तत्त्वार्थसूत्र

अनुवादादि-सहित

सम्पादक और अनुवादक

जुगलकिशोर मुख्तार, 'युगवीर'

सरसावा जि० सहारनपुर

[ग्रन्थपरीक्षा ४ भाग, स्वामी समन्तभद्र, जिनपूजाधिकारमीमांसा, उपासनातत्त्व, विवाहसमुद्देश्य, विवाहक्षेत्रप्रकाश, जैनाचार्योंका शासनभेद, वीरपुष्पाञ्जलि, हम दुखी क्यों हैं, मेरीभावना, अनित्यभावना और सिद्धिसोपान आदि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता तथा अनेकान्तादि पत्रोंके सम्पादक।]

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

सरसावा जि० सहारनपुर

प्रथमावृत्ति १००० प्रति | ज्ये० वीर निर्वाण सं० २४७० विक्रम सं० २००१, मई १९४४ | मूल्य चार आने

२१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तकानुक्रम

१ प्राक्कथन	...	...	पृष्ठ	३
२ धन्यवाद	...	...	,,	४
३ प्रस्तावना	...	...	,,	५
४ प्रभाचन्द्रीय-तत्त्वार्थसूत्रका मूल-सूत्रपाठ		...	,,	१३
५ प्रभाचन्द्रका तत्त्वार्थसूत्र (सानुवाद-व्याख्या)			,,	१७

मुद्रक—

रामा प्रिंटिंग वर्क्स, चावड़ी बाज़ार, देहली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

श्री प्रभाचन्द्राचार्यका यह तत्त्वार्थसूत्र उपलब्ध होनेके बाद सबसे पहले—आजसे कोई चार वर्ष पूर्व—मेरे द्वारा सम्पादित और अनुवादित होकर अनेकान्तके तृतीय वर्षकी किरण नं० ६ और ७ में प्रकाशित हुआ था। उसी वक्तसे कितने ही सज्जनोंने यह इच्छा व्यक्त की थी कि इसे पुस्तकाकारमें अलग छपाया जाय, परन्तु अनेक कारणोंसे अब तक छपानेका अवसर न मिलसका। अब इसे वीरसेवामन्दिरकी 'प्रकीर्णक पुस्तकमाला' में कुछ संशोधनादिके साथ प्रकाशित किया जारहा है।

यहाँ पर मैं इतना और भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि अनेकान्तके उक्त प्रकाशनको लेकर भारतीय महाविद्यालय कलकत्ताने पं० ईश्वरचन्द नामके किसी बंगाली विद्वानसे—इसपर एक टीका संस्कृत और बंगला में लिखाई है और उसे साहू शान्तिप्रसादजीके द्रव्यसे छपवाया है, ऐसा मुझे हालमें एक मित्रमहोदयके पत्रसे मालूम हुआ। साथ ही, यह भी मालूम हुआ कि उक्त विद्यालयकी तरफसे इसका अंगरेजी अनुवाद भी प्रकाशित होने वाला है।

इधर 'सन्मति-साहित्य-सदन' वर्धाने इस तत्त्वार्थसूत्रको मेरे अनुवाद-मात्रके साथ अपनी 'सन्मति-पुस्तकमाला' में प्रथम पुस्तकके तौर पर प्रकाशित करनेकी अनुमति चाही। यद्यपि मुझे यह इष्ट नहीं था कि यह पुस्तक मेरी व्याख्या और प्रस्तावनाको छोड़कर मात्र मेरे अनुवादके साथ छपाईजावे फिर भी मैंने, यह देखकर कि उक्त साहित्यसदनकी बढ़ती हुई इच्छामें व्याघात उत्पन्न न होवे, उसे अनुमति देदी। तदनुसार हालमें ही यह सूत्र अनुवादमात्रके साथ उधरसे प्रकाशित हो गया है।

इन सब बातोंसे प्रकट है कि समाजमें इस तत्त्वार्थसूत्रके पढ़नेकी रुचि बढ़ रही है और यह एक दिन संक्षेप-प्रिय जनताके हृदयमें अच्छा स्थान प्राप्त करेगा।

जुगलकिशोर मुख्तार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन्यवाद

श्रीमती गेंदोबीबीजी धर्मपत्नी श्रीमान् ला० पन्नालालजी जैन मालिक फर्म 'जैनीब्रादर्स' देहलीने इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ 'वीरसेवा-मन्दिर' सरसावाको पूर्ण आर्थिक सहायता प्रदान की है। इस उदारता और श्रुत-सेवाके लिये श्रीमतीजीको हार्दिक धन्यवाद है।

प्रकाशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

अभी तक हम उमास्वाति या उमास्वामी आचार्यके तत्त्वार्थसूत्रको ही जानते हैं—'तत्त्वार्थसूत्र' नामसे प्रायः उसीकी प्रसिद्धि है। परन्तु हालमें एक दूसरा पुरातन तत्त्वार्थसूत्र भी उपलब्ध हुआ है, जिसके कर्त्ता आचार्य प्रभाचन्द्र हैं। ग्रंथकी सन्धियोंमें प्रभाचन्द्राचार्यके साथ 'बृहत्' विशेषण लगा हुआ है, जिससे यह ध्वनित होता है कि प्रकृत ग्रंथ बड़े प्रभाचन्द्रका बनाया हुआ है। प्रभाचन्द्र नामके अनेक आचार्य हो गये हैं †। बड़े प्रभाचन्द्र आम तौरपर 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'न्यायकुमुद-चन्द्र' के कर्त्ता समझे जाते हैं; परन्तु इनसे भी पहले प्रभाचन्द्र नामके कुछ आचार्य हुए हैं, जिनमेंसे एक तो परलुरु-निवासी 'विनयनन्दी' आचार्यके शिष्य थे, और जिन्हें चालुक्य राजा 'कीर्तिवर्मा' प्रथमने एक दान दिया था ‡। ये आचार्य विक्रमकी छठी और सातवीं शताब्दीके विद्वान थे; क्योंकि उक्त कीर्तिवर्माका अस्तित्व-समय शक सं० ४८६ (वि० स० ६२४) पाया जाता है। दूसरे प्रभाचंद्र वे हैं जिनका श्रीपूज्यपादाचार्यकृत 'जैनेन्द्र' व्याकरणके 'रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य' इस सूत्रमें उल्लेख मिलता है, और इस लिये जो विक्रमकी छठी शताब्दी से पहले हुए हैं; क्योंकि आचार्य पूज्यपादका समय विक्रमकी छठी शताब्दी सुनिश्चित है। और तीसरे प्रभाचन्द्र वे हैं जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोल

---

† देखो, माणिकचन्द्रग्रन्थमालामें प्रकाशित रत्नकरण्डश्राव-काचारकी प्रस्तावना, पृ० ५७ से ६६ तक।

‡ देखो, 'साउथइण्डियन जैनिज्म', भाग दूसरा, पृ० ८८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के प्रथम शिलालेखमें पाया जाता है, और जिनकी बाबत यह कहा जाता है कि वे भद्रबाहु श्रुतकेवलीके दीक्षित शिष्य सम्राट् 'चन्द्रगुप्त' थे। इनका समय विक्रम सं० से भी कोई तीनसौ वर्ष पहलेका है। तब यह ग्रंथ कौनसे बड़े प्रभाचंद्राचार्यकी कृति है, यह बात निश्चित रूपसे अभी नहीं कही जासकती। इसके लिये विशेष खोज होनेकी ज़रूरत है। फिर भी इतना तो कह सकते हैं कि यह भद्रबाहु श्रुतकेवलीके शिष्य प्रभाचन्द्रकी कृति तो नहीं है; क्योंकि उनके द्वारा किसी भी ग्रंथ-रचनाके होनेका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ग्रन्थप्रति और उसकी प्राप्ति

उक्त तत्त्वार्थसूत्रकी यह उपलब्ध प्रति पौने दस इञ्च चौड़े आकारके आठ पत्रोंपर है। प्रथम पत्रका पहला और अन्तिम पत्रका दूसरा पृष्ठ खाली है, और इस तरह ग्रंथकी पृष्ठ-संख्या १४ है। प्रत्येक पृष्ठपर ५ पंक्तियाँ हैं, परन्तु अन्तके पृष्ठपर ४ पंक्तियां होनेसे कुल पंक्ति-संख्या ६९ होती है। प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या २० के करीब है, और इसलिये ग्रंथकी श्लोकसंख्या (३२ अक्षरोंके परिमाणसे) ४४ के करीब बैठती है।

काग़ज़ देशी साधारण कुछ पतला और खुर्दरासा लगा है। लिखाई मोटे अक्षरोंमें है और उसमें कहीं कहीं स्वरादि-संधि-सूचक संकेतचिन्ह, पदोंकी विभिन्नता-सूचक चिन्ह तथा संख्या-सूचक अंक भी बारीक टाइपमें (लघु-आकारमें) अक्षरोंके ऊपरकी ओर लगाये गये हैं।

टिप्पणी एक स्थानको छोड़कर और कहीं भी नहीं है, और वह है "त्रिविधा भोगभूमयः" सूत्रपर "जघन्य १ मध्य २ उत्कृष्ट ३" के रूपमें, जो प्रायः प्रतिलिपि करने वालेके ही हाथकी लिखी हुई जान पड़ती है और इस बातको सूचित करती है कि जिस प्रतिपरसे यह प्रति उतारी गई है संभवतः उसमें भी वह इसी रूपमें होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रतिमें अनुस्वारको कहीं भी पंचमाक्षर नहीं किया गया है। ओकारकी आकृति 'उं' और औकारकी 'ऊं' दी है।

ग्रंथप्रति यद्यपि अधिकांशमें शुद्ध है, फिर भी उसमें कुछ साधारण तथा महत्वकी अशुद्धियाँ भी पाई जाती हैं। व-ब का भेद तो बहुत ही कम रक्खा हुआ जान पड़ता है—कहीं कहीं तो इन अक्षरोंका प्रयोग ठीक हुआ है, और कहीं बकारकी जगह वकार और वकारकी जगह बकारका प्रयोग कर दिया गया है—जैसे विधो, विधः द्रव्य, विग्रहा, देव्यः, वर्षाणि, विधा, चतुर्विंशति, वैमानिका, विघ्न, विरति, बिधं, पंचविंशति, अष्टाविंशति, ज्ञानावरण, विंशति, संवरः और विरचिते इनमें सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग हुआ है; और जंबू ब्रह्मालया तथा बहु, इन शब्दोंमें 'ब' के स्थानपर 'व' का प्रयोग हुआ है, जो अशुद्ध है, और यह सब प्रायः लिपिकारकी नित्यकी बोलचालके अभ्याससे सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है।

ग्रन्थप्रतिके अन्तमें यद्यपि लिपि-सम्वत् दिया हुआ नहीं है, फिर भी यह प्रति अपने काग़ज़की स्थिति और लिखावट आदिपरसे २५०–३०० वर्षसे कमकी लिखी हुई मालूम नहीं होती। इसे पण्डित रतनलालने कोटपावदामें लिखा है, जैसा कि इसकी निम्न अन्तिम पंक्तिसे प्रकट है:—

"पंडित रतनलालेन लिपितं कोटपावदामध्ये संपूर्णं जातः"

मालूम नहीं यह 'कोटपावदा' स्थान कहाँपर स्थित है। परन्तु इस ग्रन्थप्रतिकी प्राप्ति वर्तमानमें कोटा रियासतसे हुई है। कोटामें भाई केसरीमलजी एक प्रमुख खण्डेलवाल जैन तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं, उनके पास रामपुर जि० सहारनपुरनिवासी बाबू कौशलप्रसादजीने, जो आजकल सहारनपुरमें भारत आयुर्वेदिक कैमिकल्सके मैनेजिंग डायरेक्टर हैं, यह ग्रन्थ देखा और इसे एक अपूर्व चीज समझकर उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाससे ले आए तथा विशेष जाँच पड़ताल एवं परिचयादिके लिये मेरे सुपुर्द किया, जिसके लिये मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ।

भाई केसरीमलजीने इस ग्रंथकी प्राप्तिका जो इतिहास बा० कौशलप्रसादजीको बतलाया उससे मालूम हुआ कि 'कोटामें भट्टारककी एक गद्दी थी, उस गद्दीपर दुर्भाग्यसे एक ऐसा ही आदमी आगया जिसने वहाँका सारा शास्त्रभण्डार रद्दीमें बेच दिया! कुछ दिन पहले केसरीमलजीने इस प्रकारकी रद्दीकी एक बोरी एक मुसलमान बोहरेके यहाँ देखी और उसे आठ आनेमें खरीद लिया। उसी बोरीमेंसे इस ग्रन्थरत्नकी प्राप्ति हुई है।' ग्रंथ-प्राप्तिकी यह छोटी-सी घटना बड़ी ही हृदयद्रावक है और इससे जैनियोंके शास्त्रभण्डारोंकी अव्यवस्था, अपात्रोंके हाथमें उनकी सत्ता और साथ ही अनोखी श्रुतभक्तिपर दो आँसू बहाये बिना नहीं रहा जाता! जैनियोंकी इस लापर्वाही और ग्रन्थोंकी बेदरकारीके कारण न मालूम कितने ग्रंथरत्न पंसारियोंकी दुकानोंपर पुड़ियाओंमें बँध बँधकर नष्ट हो चुके हैं!! कितने ही ग्रंथोंका उल्लेख तो मिलता है परन्तु वे ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। इस विषयमें दिगम्बर समाज सबसे अधिक अपराधी है, उसकी ग़फ़लत अबतक भी दूर नहीं हुई और वह आज भी अपने ग्रंथोंकी खोज और उनके उद्धारके लिये कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं कर रहा है। और तो क्या, दिगम्बर ग्रन्थोंकी कोई अच्छी व्यवस्थित सूची तक भी वह अबतक तैय्यार करानेमें समर्थ नहीं होसका; जबकि श्वेताम्बर समाज अपने ग्रंथोंकी ऐसी अनेक विशालकाय-सूचियाँ प्रकट कर चुका है। जिनवाणी माताकी भक्तिका गीत गानेवालों और उसे नित्य ही अर्घ चढ़ानेवालोंके लिये ये सब बातें निःसन्देह बड़ी ही लज्जाका विषय हैं। उन्हें इनपर ध्यान देकर शीघ्र ही अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये ऐसा कोई व्यवस्थित प्रयत्न करना चाहिये जिससे शीघ्र ही लुप्तप्राय जैन ग्रंथोंकी खोजका काम ज़ोरके साथ चलाया जासके, खोजे हुए ग्रन्थोंका उद्धार होसके और संपूर्ण जैन ग्रंथोंकी एक मुकम्मल तथा सुव्यवस्थित सूची तैयार हो सके। अस्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब मैं मूल ग्रन्थको अनुवादके साथ रखकर उसका पूरा परिचय करा देना चाहता हूँ। परन्तु ऐसा करनेसे पहले इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि यह ग्रंथ आकारमें छोटा होनेपर भी उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रकी तरह दश अध्यायोंमें विभक्त है, मूल विषय भी इसका उसीके समान मोक्षमार्गका प्रतिपादन है और उसका क्रम भी प्रायः एक ही जैसा है— कहीं कहींपर थोड़ासा कुछ विशेष ज़रूर पाया जाता है, जिसे यथावसर सूचित कर दिया गया है। इन अध्यायोंमें सूत्रोंकी संख्या क्रमशः १५, १२, १८, ६, ११, १४, ११, ८, ७, ५ है, और इस तरह कुल सूत्र १०७ हैं। इस तत्त्वार्थसूत्रमें दश अध्याय होनेके कारण इसे 'दशसूत्र' नाम भी दिया गया है—उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रको भी 'दशसूत्र' कहा जाता है—,और यह नाम ग्रंथकी प्रथम पंक्तिमें ही, उसका लिखना प्रारम्भ करते हुए, 'अथ' और 'लिख्यते' पदोंके मध्यमें दिया है। ग्रंथके अन्तमें—१०वीं संधि (पुष्पिका) के अनन्तर—'इति' और 'समाप्तं' पदोंके मध्यमें इसे 'जिनकल्पी सूत्र' भी लिखा है। इस प्रकार ग्रंथप्रतिके आदि, मध्य और अन्तमें इस सूत्रग्रंथके क्रमशः दशसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र और जिनकल्पीसूत्र, ऐसे तीन नाम दिये हैं। पिछला नाम अपनी खास विशेषता रखता है और उसने बा० कौशलप्रसादजीको इस ग्रन्थको कोटासे लानेके लिये और भी अधिक प्रेरित किया है। हाँ, मात्र १०वीं संधिमें 'तत्त्वार्थसूत्र' के स्थानपर 'तत्त्वार्थसारसूत्र' ऐसा नामोल्लेख भी है, जिसका यह आशय होता है कि यह ग्रंथ तत्त्वार्थ-विषयका सार-भूत ग्रंथ है अथवा इस सूत्रमें तत्त्वार्थशास्त्रका सार खींचा गया है। पिछले आशयसे यह भी ध्वनित हो सकता है कि इस ग्रंथमें सम्भवतः उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका ही सार खींचा गया है। ग्रन्थ-प्रकृति और उसके-अर्थ सादृश्यको देखते हुए, यद्यपि, यह बात कुछ असंगत मालूम नहीं होती बल्कि अधिकतर झुकाव उसके माननेकी ओर होता है; फिर भी ९ संधियोंमें 'सार' शब्दका प्रयोग न होनेसे १०वीं संधिमें उसके प्रयोगको प्रक्षिप्त भी कहा जा सकता है। कुछ भी हो, अभी ये सब बातें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष अनुसंधानसे सम्बन्ध रखती हैं, और इसके लिये ग्रंथकी दूसरी प्रतियोंको भी खोजनेकी जरूरत है। साथ ही, यह भी मालूम होना जरूरी है कि इस सूत्रग्रन्थपर कोई टीका-टिप्पणी भी लिखी गई है याकि नहीं—जिसके लिखे जानेकी बहुत बड़ी सम्भावना है। यदि कोई टीका-टीप्पणी उपलब्ध हो तो उसे भी विशेष परिचयादिके द्वारा प्रकाशमें लाना चाहिये।

फिर भी इस ग्रंथके विषयमें इतना कह देनेमें तो कोई आपत्ति मालूम नहीं होती कि इसके सूत्र अर्थगौरवको लिये होनेपर भी आकारमें छोटे, सुगम, कण्ठ करने तथा याद रखनेमें आसान हैं, और उनसे तत्त्वार्थशास्त्र अथवा मोक्षशास्त्रका मूल विषय सूचनारूपमें संक्षेपतः सामने आजाता है।

एक बात और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि इस सूत्रग्रन्थके शुरूमें प्रतिपाद्य विषयके सम्बंधको व्यक्त करता हुआ एक पद्य मंगलाचरणका है, परन्तु अन्तमें ग्रंथकी समाप्ति आदिका सूचक कोई पद्य नहीं है। ऐसे गद्यात्मक सूत्रग्रंथोंमें जिनका प्रारम्भ मंगलाचरणादिके रूपमें किसी पद्य-द्वारा होता है उनके अन्तमें भी कोई पद्य समाप्ति आदिका जरूर होता है, ऐसा अक्सर देखनेमें आया है। उदाहरणके लिये परीक्षा-मुखसूत्र, न्यायदीपिका और राजवार्तिकको ले सकते हैं। इन ग्रंथोंमें आदिके समान अन्तमें भी एक एक पद्य पाया जाता है। जिन ग्रंथ-प्रतियोंमें वह उपलब्ध नहीं होता उनमें वह लिखनेसे छूट गया है, जैसे कि न्यायदीपिका और राजवार्तिककी मुद्रित प्रतियोंमें अन्तका पद्य छूट गया है, उसे दूसरी हस्तलिखित प्रतियोंपरसे खोजकर प्रकट किया जा चुका है *। ऐसी स्थिति होते हुए इस सूत्रग्रंथके अन्तमें भी कमसे कम एक पद्यके होनेकी

---

* देखो, प्रथम वर्षके 'अनेकान्त' का ५ वीं किरण में 'पुरानी बातोंकी खोज' शीर्षक लेखका नं० १२, १३ पृ० २७२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत बड़ी सम्भावना है। मेरे खयालसे वह पत्र इस ग्रंथप्रतिमें अथवा जिसपरसे यह प्रति की गई है उसमें छूट गया है। उसके सामने आने पर और भी कुछ बातोंपर प्रकाश पड़नेकी संभावना है, और इसलिये इस ग्रंथकी दूसरी प्रतियोंको खोजनेकी और भी ज़्यादा ज़रूरत है। आशा है इसके लिये साहित्य-प्रेमी विद्वान् अपने अपने यहाँके शास्त्रभंडारोंको ज़रूर ही खोजनेका प्रयत्न करेंगे और अपनी खोजके परिणामसे मुझे शीघ्र ही सूचित कर अनुगृहीत करेंगे।

मूलग्रंथ और उसका अनुवादादिक

उक्त प्रतिपरसे मूल सूत्रादिको उद्धृत करते हुए जहाँ मूलका पाठ स्पष्टतया अशुद्ध जान पड़ा है वहाँ उसके स्थानपर वह पाठ दे दिया गया है जो अपनेको शुद्ध प्रतीत हुआ है और ग्रन्थप्रतिमें पाये जाने वाले अशुद्ध पाठको फुटनोटमें दिखला दिया है, जिससे वस्तुस्थितिके ठीक समझनेमें कोई प्रकारका भ्रम न रहे और न मूल सूत्रोंके पढ़ने तथा समझनेमें कोई दिक्कत ही उपस्थित होवे। परन्तु वकारके स्थानपर बकार और बकारके स्थानपर वकार बनानेकी जिन अशुद्धियोंको ऊपर सूचित किया जा चुका है उन्हें फुटनोटोंमें दिखलानेकी ज़रूरत नहीं समझी गई। इसी तरह संधि तथा पद-विभिन्नतादिके संकेतचिन्होंको भी देनेकी ज़रूरत नहीं समझी गई। इसके अतिरिक्त जो अक्षर सूत्रोंमें छूटे हुए जान पड़े हैं उन्हें सूत्रोंके साथ ही [ ] इस प्रकारके कोष्ठकके भीतर रख दिया है और जो पाठ अधिक संभाव्य प्रतीत हुए हैं उन्हें प्रश्नांङ्कके साथ (...?) ऐसे कोष्ठकमें दे दिया है। पाई (।) दो पाई (॥) के विरामचिन्ह ग्रंथमें लगे हुए नहीं हैं, परंतु उनके लिये स्थान छूटा हुआ है, उन्हें भी यहाँ दे दिया है। साथ ही, वाक्यके अन्तमें आए हुए अनुस्वारको 'म्' के रूप में रख दिया है। और इस तरह मूल ग्रंथको उसके असली रूपमें पाठकोंके सामने रखनेका भरसक प्रयत्न किया गया है; फिर भी यदि कोई अशुद्धियाँ रह गई हों तो उन्हें विज्ञ पाठक सूचित करने की कृपा करें, जिससे उनका सुधार हो सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवादको मूलसूत्रादिके अनन्तर अनुवादके रूपमें ही रक्खा गया है—व्याख्यादिके रूपमें नहीं। और उसे भिन्न टाइप द्वारा एक ही पैरेग्राफमें सिंगल इनवर्टेडकामाज़ के भीतर दे दिया गया है, जिससे मूलको मूलके रूपमें ही समझा जा सके। जहाँ कहीं विशेष व्याख्या, स्पष्टीकरण अथवा तुलनाकी ज़रूरत पड़ी है वहां उस सबको अनुवादके अनन्तर भिन्न पैरेग्राफोंमें अलग दे दिया है।

इस प्रकार यह मूल ग्रन्थ और उसके अनुवादादिकको देनेकी पद्धति है, जिसे यहां अपनाया गया है।

ग्रन्थारंभसे पूर्वका अंश

॥ ऐं ॥ ॐ नमः सिद्धं। अथ दशसूत्रं‡ लिख्यते।

'ऐं, ॐ, सिद्ध को नमस्कार। यहां (अथवा अब) दशसूत्र लिखा जाता है।'

यह प्रायः लिपिकर्त्ता लेखकका मंगलाचरणके साथ ग्रंथका नामोल्लेख-पूर्वक उसके लिखनेकी प्रतिज्ञा एवं सूचनाका वाक्य है। हो सकता है कि यह वाक्य प्रकृत ग्रंथप्रतिके लेखक पं० रतनलालकी खुदकी कृति न हो बल्कि उस ग्रंथप्रतिमें ही इस रूपसे लिखा हो जिसपरसे उन्होंने यह प्रति उतारी है। मूल ग्रंथके मंगलाचरणादिके साथ इसका सम्बन्ध नहीं है।

वीर-सेवा-मन्दिर
सरसावा जि० सहारनपुर

जुगलकिशोर मुख्तार

‡ ग्रन्थप्रतिमें 'दशसूत्र' ऐसा अशुद्ध पाठ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभाचन्द्रीय-तत्त्वार्थसूत्रका

मूल-सूत्रपाठ

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः सनातनः ।
आविरासीद्यतो वन्दे तमहं वीरमच्युतम् ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनावगमवृत्तानि मोक्षहेतुः ॥१॥ जीवादिसप्ततत्वम् ॥२॥ तदर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥३॥ तदुत्पत्तिर्द्विधा ॥४॥ नामादिना तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाणे द्वे ॥६॥ नयाः सप्त ॥७॥ तैरधिगमस्तत्वानाम् ॥८॥ सदादिभिश्च ॥९॥ मत्यादीनि ज्ञानानि ॥१०॥ क्षयोपशम-(क्षय-)हेतवः ॥११॥ षड्विधोऽवधिः ॥१२॥ द्विविधो मनःपर्ययः ॥१३॥ अखण्डं केवलम् ॥१४॥ समयं समयमेकत्र चत्वारि ॥१५॥

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

जीवस्य पञ्च भावाः ॥१॥ उपयोगस्तल्लक्षणम् ॥२॥ स द्विविधः ॥३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥४॥ शेषाः स्थावराः ॥५॥ द्रव्य-भावभेदादिन्द्रियं द्विप्रकारम् ॥६॥ विग्रहाद्या गतयः ॥७॥ सचित्तादयो योनयः ॥८॥ औदारिकादीनि शरीराणि ॥९॥ एकस्मिन्नात्मन्याचतुर्भ्यः ॥१०॥ आहारकं प्रमत्त [संयत] स्यैव ॥११॥ तीर्थेश-देव-नारक-भोगभुवोऽखण्डायुषः ॥१२॥

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

रत्नप्रभाद्याः सप्त भूमयः ॥१॥ तासु नारकाः सपञ्चदुःखाः ॥२॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयोऽसंख्येयद्वीपोदधयः ॥३॥ तन्मध्ये लक्ष-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योजनप्रमः सचूलिको मेरुः ॥४॥ हिमवत्प्रमुखाः षट् कुलनगाः ॥५॥ तेषु पद्मादयो ह्रदाः ॥६॥ तन्मध्ये श्र्यादयो देव्यः ॥७॥ तेभ्यो गंगादयश्चतुर्दश महानद्यः ॥८॥ भरतादीनि वर्षाणि ॥९॥ त्रिविधा भोगभूमयः ॥१०॥ भरतैरावतेषु षट् कालाः ॥११॥ विदेहेषु सन्ततश्चतुर्थः ॥१२॥ आर्या म्लेच्छाश्च नरः ॥१३॥ त्रिषष्टि-शलाकापुरुषाः ॥१४॥ एकादशरुद्राः ॥१५॥ नवनारदाः ॥१६॥ चतुर्विंशतिकामदेवाः ॥१७॥ मनुष्यतिरश्चामुत्कृष्ट-जघन्यायुषी त्रिपल्योपपान्तर्मुहूर्ते ॥१८॥

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

दशाऽष्टपञ्चभेद-भावन-व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥१॥ वैमानिका द्विविधाः कल्पजकल्पातीतभेदात् ॥२॥ सौधर्मादयः षोडश कल्पाः ॥३॥ ब्रह्मालयाः लौकान्तिकाः ॥४॥ ग्रैवेयकाद्या अकल्पाः ॥५॥ सामान्यतो देवनारकाणामुत्कृष्टेतरस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागराऽयुता-ब्दाः ॥६॥

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चास्तिकायाः ॥१॥ नित्याऽवस्थिताः ॥२॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥३॥ धर्मादेरक्रियत्वम् ॥४॥ जीवादेर्लोकाकाशेऽवगाहः ॥५॥ सत्त्वं द्रव्यलक्षणम् ॥६॥ उत्पादादियुक्तं सत् ॥७॥ सह-क्रम-भाविगुण-पर्ययवद्द्रव्यम् ॥८॥ कालश्च ॥९॥ अनन्तसमयश्च ॥१०॥ गुणाना-मगुणत्वम् ॥११॥

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

त्रिकरणैः कर्म योगः ॥१॥ प्रशस्ताप्रशस्तौ ॥२॥ पुण्यपापयोः [हेतू] ॥३॥ गुरुनिन्हवादयो ज्ञान-दर्शनाऽऽवरणयोः ॥४॥ दुःखत्र-त्यनुकम्पाद्या असाता-सातयोः ॥५॥ केवल्यादिविवादो(द्यवर्णवादो)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनमोहस्य ॥६॥ कषाय-जनित-तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥७॥ बह्वारम्भपरिग्रहाद्या नारकाद्याऽऽयुष्कहेतवः ॥८॥ योगवक्रताद्या अशुभनाम्नः ॥९॥ तद्वैपरीत्यं शुभस्य ॥१०॥ दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशभावनास्तीर्थकरत्वस्य ॥११॥ आत्मविकत्थनाद्या नीचैर्गोत्रस्य ॥१२॥ तद्व्यत्ययो महतः ॥१३॥ दानादिविघ्नकरणमन्तरायस्य ॥१४॥

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हिंसादि-पञ्चविरतिर्व्रतम् ॥१॥ महाऽणुभेदेन तद्द्विविधम् ॥२॥ तद्दार्ढ्याय भावनाः पञ्चविंशतिः ॥३॥ मैत्र्यादयश्चतस्रः ॥४॥ श्रमणानामष्टाविंशतिर्मूलगुणाः ॥५॥ श्रावकाणामष्टौ ॥६॥ शीलसप्तकं च ॥७॥ शंकाद्याः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥८॥ बंधादयो व्रतानाम् ॥९॥ मित्रस्मृत्याद्याः संन्यासस्य ॥१०॥ स्व-पर-हिताय स्वस्यातिसर्जनं दानम् ॥११॥

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

मिथ्यादर्शनादयो बंधहेतवः ॥१॥ चतुर्धा बन्धाः ॥२॥ मूलप्रकृतयोऽष्टौ ॥३॥ उत्तरा अष्टचत्वारिंशच्छतम् ॥४॥ ज्ञानावरणादि-त्रयस्यान्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः पराध्या (परा१) स्थितिः ॥५॥ मोहनीयस्य सप्ततिः ॥६॥ त्रयस्त्रिंशदेवायुषः ॥७॥ नामगोत्रयोर्विंशतिः ॥८॥

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

गुप्त्यादिना संवरः ॥१॥ तपसा निर्जराऽपि ॥२॥ उत्तमसंहनन-स्यान्तर्मुहूर्तावस्थायि ध्यानम् ॥३॥ तच्चतुर्विधम् ॥४॥ आद्ये संसार-कारणे ॥५॥ परे मोक्षस्य ॥६॥ पुलाकाद्याः पंच निर्ग्रन्थाः ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

मोहक्षये घातित्रयापनोदात्केवलम् ॥१॥ अशेषकर्मक्षये मोक्षः ॥२॥ तत ऊर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥३॥ ततो न गमनं धर्मास्तिकायाभावात् ॥४॥ क्षेत्रादिसिद्धभेदाः साध्याः ॥५॥

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

इति जिनकल्पि-सूत्रं समाप्तम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

श्रीप्रभाचन्द्राचार्य-विरचित

तत्त्वार्थसूत्र

[अनुवादादि-सहित]

पहला अध्याय

(मंगलाचरण)

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः सनातनः ।
आविरासीद्यतो वंदे तमहं वीरमच्युतम् ॥१॥

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप सनातन मोक्ष-मार्ग जिससे—जिसके उपदेशसे—प्रकट हुआ है उस अच्युत वीरकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय मोक्षमार्ग है, उस सनातन मोक्षमार्गका जिनके उपदेशद्वारा लोकमें आविर्भाव हुआ है—पुनः प्रकटीकरण हुआ है—उन अमर अविनाशी वीरप्रभुका, उनके उस गुणविशेषके साथ वन्दन-स्मरण करके यहां यह व्यक्त किया गया है कि इस ग्रंथके प्रतिपाद्य विषयका सम्बंध वीरप्रभुके उपदेशसे है—उसीके अनुसार सब कुछ कथन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सूत्रारम्भ)

सम्यग्दर्शनाऽवगमवृत्तानि मोक्षहेतुः ॥१॥

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—ये तीनों मिले हुए—मोक्षका एक साधन हैं।'

यह सूत्र और उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका पहला सूत्र दोनों एक ही टाइप और एक ही आशयके हैं। अक्षरसंख्या भी दोनोंकी १५–१५ ही है। वहाँ ज्ञान, चारित्र और मार्ग शब्दोंका प्रयोग हुआ है तब यहाँ उनके स्थानपर क्रमशः अवगम, वृत्त और हेतु शब्दोंका प्रयोग हुआ है, जो समान अर्थके ही द्योतक हैं।

जीवादि सप्त तत्त्वम् ॥२॥

'जीव आदि सात तत्त्व हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ऐसे छह तत्त्वोंके ग्रहणका निर्देश है; क्योंकि जैनागममें जीव सहित इन तत्त्वोंकी ही 'सप्ततत्त्व' संज्ञा है। यह सूत्र और उमास्वातिका चौथा सूत्र दोनों एकार्थ- वाचक हैं। उसमें जब सातों तत्त्वोंके नाम दिये गये हैं तब इसमें 'आदि' शब्दसे शेष छह रूढ़ तत्त्वोंका संग्रह किया गया है, और इसलिये इसमें अक्षरोंकी संख्या अल्प हो गई है।

तदर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥३॥

'उनके—सप्ततत्त्वोंके—अर्थश्रद्धानको — निश्चयरूप रुचि-विशेषको—सम्यग्दर्शन कहते हैं।'

यह उमास्वातिके द्वितीय सूत्रके साथ मिलता जुलता है। दोनोंकी अक्षर संख्या भी समान है—वहाँ 'तत्त्वार्थश्रद्धानं' पद दिया है तब यहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'तदर्थश्रद्धानं' पदके द्वारा वही आशय व्यक्त किया गया है। भेद दोनोंमें कथनशैलीका है। उमास्वातिने सम्यग्दर्शनके लक्षणमें प्रयुक्त हुए 'तत्त्व' शब्दको आगे जाकर स्पष्ट किया है और प्रभाचन्द्रने पहले 'तत्त्व' को बतला कर फिर उसके अर्थश्रद्धानको सम्यग्दर्शन बतलाया है और इस तरह कथनका सरल मार्ग अंगीकार किया है। कथनका यह शैली-भेद आगे भी बराबर चलता रहा है।

तदुत्पत्तिर्द्विधा ॥४॥

'उसकी—सम्यग्दर्शनकी—उत्पत्ति दो प्रकारसे है।'

यहाँ उन दो प्रकारोंका—आगमकथित निसर्ग और अधिगम भेदोंका—उल्लेख न करके उनकी मात्र सूचना की गई है; जबकि उमास्वातिने 'तन्निसर्गादधिगमाद्वा' इस तृतीय सूत्रके द्वारा उनका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

नामादिना तन्न्यासः ॥५॥

'नाम आदिके द्वारा उनका—सम्यग्दर्शनादिका तथा जीवादि तत्त्वोंका,—न्यास (निक्षेप) होता है—व्यवस्थापन और विभाजन किया जाता है।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे स्थापना, द्रव्य और भावके ग्रहणका निर्देश है; क्योंकि आगममें न्यास अथवा निक्षेपके चार ही भेद किये गये हैं और वे षट्खण्डागमादि मूल ग्रंथोंमें बहुत ही रूढ़ तथा प्रसिद्ध हैं और उनका बार बार उल्लेख आया है। और इसलिये इस सूत्रका भी वही आशय है जो उमास्वातिके पाँचवें सूत्र 'नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव-तस्तन्न्यासः' का होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणे द्वे ॥६॥

'प्रमाण दो हैं।'

यहाँ दोकी संख्याका निर्देश करनेसे प्रमाणके आगमकथित प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों भेदोंका संग्रह किया गया है। यह उमास्वातिके १०वें सूत्र "तत्प्रमाणे" के साथ मिलता-जुलता है, परन्तु दोनोंकी कथनशैली और कथनक्रम भिन्न हैं। इसमें प्रमाणके सर्वार्थसिद्धि-कथित 'स्वार्थ' और 'परार्थ' नामके दो भेदोंका भी समावेश हो जाता है।

नयाः सप्त ॥७॥

'नय सात हैं।'

यहाँ सातकी संख्याका निर्देश करनेसे नयोंके आगम-कथित नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ऐसे सात भेदोंका संग्रह, किया गया है। उमास्वातिने नयोंका उल्लेख यद्यपि 'प्रमाण-नयैरधिगमः' इस छठे सूत्रमें किया है परन्तु उनकी *सात संख्या और नामोंका सूचक सूत्र प्रथम अध्यायके अन्तमें दिया है। यहाँ दूसरा ही क्रम रक्खा गया है और उक्त छठे सूत्रके आशयका जो सूत्र यहाँ दिया है वह इससे अगला आठवाँ सूत्र है।

---

* श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ और उसके भाष्यमें नयोंकी मूल संख्या नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द, ऐसे पांच दी है, फिर नैगमके दो और शब्दनयके साम्प्रत, समभिरूढ, एवंभूत ऐसे तीन भेद किये गये हैं, और इस तरह नयके आठ भेद किये हैं। परन्तु पं० सुखलालजी अपनी तत्वार्थसूत्रकी टीकामें यह स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि जैनागमों और दिगम्बरीय ग्रंथोंकी परम्परा उक्त सात नयोंकी ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तैरधिगमस्तत्त्वानाम् ॥८॥

'उनके—प्रमाणों तथा नयोंके—द्वारा तत्त्वोंका विशेष ज्ञान होता है।'

इस सूत्रमें 'प्रमाणनयैः' की जगह 'तैः' पदके प्रयोग से जहाँ सूत्रका लाघव हुआ है वहाँ 'तत्त्वानाम्' पद कुछ अधिक जान पड़ता है। यह पद उमास्वातिके उक्त छठे सूत्रमें नहीं है; फिर भी इस पदसे अर्थमें स्पष्टता जरूर आ जाती है।

सदादिभिश्च ॥९॥

'सत् आदिके द्वारा भी तत्वोंका विशेष ज्ञान होता है।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व नामके सात अनुयोगद्वारोंके ग्रहणका निर्देश है; क्योंकि सत्-सहित इन अनुयोगद्वारोंकी आठ संख्या आगममें रूढ़ है—षट्खण्डागमादिकमें इनका बहुत विस्तारके साथ वर्णन है। इस सूत्रका और उमास्वातिके "सत्संख्यादि' सूत्र नं० ८ का एक ही आशय है।

† मत्यादीनि ज्ञानानि ॥१०॥

'मति आदिक ज्ञान हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दके द्वारा श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल, इन चार ज्ञानोंका संग्रह किया गया है, क्योंकि मति-ज्ञानको आदि लेकर ये ही पाँच ज्ञान आगममें वर्णित हैं।

---

† ग्रन्थप्रतिमें 'म' के स्थान पर 'स' बना है, जो लिपिकी गलती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षयोपशम-[क्षय]हेतवः(तूनि) ॥११॥

'मत्यादिक ज्ञान क्षयोपशम-क्षय-हेतुक हैं।'

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, ये चार ज्ञान तो मतिज्ञानावरणादि-कर्म-प्रकृतियोंके क्षयोपशमसे होते हैं, इसलिये 'क्षायोपशमिक' कहलाते हैं और केवलज्ञान ज्ञानावरणादिघातियाकर्म-प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होता है, इसलिये 'क्षायिक' कहा जाता है।

षड्विधोऽवधिः ॥१२॥

'अवधिज्ञान छह भेदरूप है।'

यहाँ छहकी संख्याका निर्देश करनेसे अवधिज्ञानके अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित ऐसे छह भेदोंका ग्रहण किया गया है, जो सब क्षयोपशमके निमित्तसे ही होते हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान जो देव-नारकियोंके बतलाया गया है वह भी क्षयोपशमके बिना नहीं होता और उक्त छह भेदोंमें उसका भी अन्तर्भाव होजाता है, इसीसे यहाँ उसका पृथक रूपसे ग्रहण करना नहीं पाया जाता। यह सूत्र उमास्वातिके 'क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां' इस २२वें सूत्रके साथ मिलता जुलता है।

द्विविधो मनःपर्ययः ॥१३॥

'मनःपर्ययज्ञान दो भेदरूप है।'

यहाँ दोकी संख्याके निर्देश-द्वारा मनःपर्ययके ऋजुमति और विपुलमति इन दोनों प्रसिद्ध भेदोंका संग्रह किया गया है और इसलिये इसका वही आशय है जो उमास्वातिके 'ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः' इस सूत्र नं० २३ का होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अखंडं केवलम् ॥१४॥

'केवलज्ञान अखंड है—उसके कोई भेद-प्रभेद नहीं हैं।'

इस सूत्रके आशयका कोई सूत्र उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें नहीं है।

समयं † समयमेकत्र चत्वारि ॥१५॥

'कभी कभी एक जीवमें युगपत् चार ज्ञान होते हैं।

केवलज्ञानको छोड़ कर शेष चार ज्ञान एक आत्मामें किसी समय युगपत् हो सकते हैं। इससे दो तीन ज्ञानोंका भी एक साथ होना ध्वनित होता है। दो एक साथ होंगे तो मति, श्रुत होंगे, और तीन होंगे तो मति, श्रुत, अवधि अथवा मति, श्रुत और मनःपर्यय होंगे। एक ज्ञान केवलज्ञान ही होता है—उसके साथमें दूसरे ज्ञान नहीं रहते। यह सूत्र उमास्वातिके 'एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः' इस सूत्रके समकक्ष है और इसी-जैसे आशयको लिये हुए है। परन्तु इसकी शब्द-रचना कुछ सन्दिग्धसी जान पड़ती है। संभव है 'एकत्र चत्वारि' के स्थानपर 'एकत्रैकद्वित्रिचत्वारि' ऐसा पाठ हो।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोध्यायः ॥१॥

'इस प्रकार श्री बृहत् प्रभाचन्द्र-विरचित तत्त्वार्थसूत्रमें पहला अध्याय समाप्त हुआ।'

---

† ग्रन्थप्रति में 'समयं' के स्थानपर 'समय' बना हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरा अध्याय

जीवस्य पंच भावाः ॥१॥

'जीवके पांच भाव होते हैं।'

यहाँ पाँचकी संख्याका निर्देश करनेसे जीवके आगम-कथित औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक, ऐसे पाँच भावोंका संग्रह किया गया है। उमास्वातिके दूसरे अध्यायका "औपशमिकक्षायिकौ" आदि प्रथम सूत्र भी जीवके पाँच भावोंका प्रतिपादक है। उसमें पाँचोंके नाम दिये हैं, जिससे वह बड़ा सूत्र हो गया है। आशय दोनोंका प्रायः एक ही है।

उपयोगस्तल्लक्षणम् ॥२॥

'जीवका लक्षण उपयोग है।'

यह सूत्र और उमास्वातिका 'उपयोगो लक्षणं' नामका सूत्र एक ही अर्थके वाचक हैं।

†स द्विविधः ॥३॥

'वह (उपयोग) दो प्रकारका होता है।'

यहाँ दोकी संख्याका निर्देश करनेसे उपयोगके आगमकथित दो मूल भेदोंका संग्रह किया गया है—उत्तर भेदोंका वैसा कोई निर्देश नहीं किया जैसाकि उमास्वातिके "स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः" इस सूत्र नं० ९ में पाया जाता है।

---

† ग्रन्थप्रति में 'स द्वि'के स्थानपर 'सद्द्वि' दिया है, जो अशुद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥४॥

'द्वीन्द्रियादिक जीव त्रस हैं।'

यहां 'आदिशब्दसे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा संज्ञी-असंज्ञीके भेदरूप पंचेन्द्रिय जीवोंके ग्रहणका निर्देश है। यह सूत्र और उमास्वातिका १४ वाँ सूत्र अक्षरशः एक ही हैं †।

शेषाः ‡ स्थावराः ॥५॥

'शेष (एकेन्द्रिय) जीव स्थावर हैं।'

उमास्वातिके दिगम्बरीय सूत्रपाठके 'पृथिव्यपतेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः' सूत्र नं० १३ का जो आशय है वही इस सूत्रका है। और इसलिए स्थावर जीव पृथिवी आदिके भेदसे पाँच प्रकार के हैं।

द्रव्यभावभेदादिंद्रियं द्विप्रकारम् ॥६॥

'द्रव्य और भावके भेदसे इन्द्रिय दो प्रकार है।'

इस सूत्रमें यद्यपि उमास्वातिके 'द्विविधानि' १६, 'निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्' १७, लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्' १८ इन तीन सूत्रोंके आशयोंका समावेश है; परन्तु द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रियके भेदोंको खोला नहीं है।

विग्रहाद्या गतयः ॥७॥

'विग्रहा आदि गतियाँ हैं।'

यहाँ गतियोंकी कोई संख्या नहीं दी। मुख्यभेद दो हैं—१ विग्रहा, २ अविग्रहा। विग्रहा गति संसारी जीवोंकी और अविग्रहा संसारी तथा मुक्त दोनोंकी होती है। अविग्रहाको 'इषुगति' भी कहते हैं और 'विग्रहा'

---

† श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमें १४वें सूत्रका रूप 'तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः' ऐसा दिया है; जिसके द्वारा अग्नि और वायुकायके जीवोंको भी त्रसोंमें परिगणित किया है।

‡ ग्रन्थप्रतिमें विसर्गहीन 'शेषा' पाठ है, जो अशुद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के तीन भेद किये जाते हैं—१पाणिमुक्ता २ लाङ्गलिका ३ गोमूत्रिका। आर्षग्रंथोंमें इषुगति-सहित इन्हें गतिके चार भेद गिनाये हैं। यदि इन चारोंका ही अभिप्राय यहाँ होता तो इस सूत्रका कुछ दूसरा ही रूप होता। अतः विग्रहा, अविग्रहाके अतिरिक्त गतिके नरकगति, तिर्यंचगति, देवगति, मनुष्यगति ऐसे जो चार भेद और किये जाते हैं, उनका भी समावेश इस सूत्रमें हो सकता है। उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें इस प्रकारका कोई अलग सूत्र नहीं है—यों 'अविग्रहा जीवस्य, विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः, एकसमयाऽविग्रहा' आदि सूत्रोंमें विग्रहादि-गतियोंका उल्लेख पाया ही जाता है।

सचित्तादयो योनयः ॥८॥

'सचित्त आदि योनियाँ हैं।'

यहाँ सूत्रमें यद्यपि योनियोंकी संख्या नहीं दी; परन्तु सचित्त योनिसे जिनका प्रारम्भ होता है उनकी संख्या आगममें नव है—ग्रंथप्रतिमें 'योनयः' पद पर ९ का अंक भी दिया हुआ है। ऐसी हालतमें उमास्वातिके 'सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः' इस सूत्र नं० ३२ का जो आशय है वही इस सूत्रका आशय समझना चाहिये।

औदारिकादीनि शरीराणि ॥९॥

'औदारिक आदि शरीर होते हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण नामके चार शरीरोंके ग्रहणका संकेत है; क्योंकि औदारिक-सहित शरीरोंके पांच ही भेद आगममें पाये जाते हैं। और इसलिये इस सूत्रका वही आशय है जो उमास्वातिके 'औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि' इस सूत्र नं० ३६ का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकस्मिन्नात्मन्याचतुर्भ्यः ॥१०॥

'एक जीवमें चार तक शरीर (एक साथ) होते हैं।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः' इस सूत्रके साथ मिलता जुलता है; परन्तु उमास्वातिके सूत्रमें 'तदादीनि' पदके द्वारा 'तैजस और कार्मण नामके दो शरीरोंको आदि लेकर' ऐसा जो कथन किया गया है और उसके द्वारा एक शरीर अलग नहीं होता ऐसा जो नियम किया गया है वह स्पष्ट विधान यहाँ इस सूत्रसे उपलब्ध नहीं होता।

आहारकं प्रमत्त[संयत]स्यैव ॥११॥

'आहारक प्रमत्तसंयतके ही होता है।'

आहारक शरीरके लिये यह नियम है कि वह प्रमत्तसंयत नामके छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके ही होता है—अन्यके नहीं। उमास्वातिके तत्वार्थसूत्रमें इसी आशयका सूत्र नं० ४९ पर है। उसमें आहारक शरीरके शुभ, विशुद्ध, अव्याघाति ऐसे तीन विशेषण दिये हैं। मूल बात आहारक शरीरके स्वामित्वनि र्देशकी दोनों सूत्रोंमें एक ही है। श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमें 'प्रमत्तसंयतस्यैव' के स्थानपर 'चतुर्दशपूर्वधरस्यैव' पाठ है, और इसलिये वे चौदह पूर्वधारी (श्रुतकेवली) मुनिके ही आहारक शरीरका होना बतलाते हैं।

तीर्थेश- देव- नारक-भोगभुवोऽखंडायुषः†॥१२॥

'तीर्थंकर, देव, नारकी और भोगभूमिया अखंड आयु वाले होते हैं।'

अकालमरणके द्वारा बद्ध आयुका बीचमें खण्डित न होना 'अखण्डायु' कहलाता है। तीर्थंकरों आदिका अकालमरण नहीं होता—बाह्य निमित्तोंको

---

†अखंडायुषः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाकर उनका आयु छिदता–भिदता अथवा परिवर्तनीय नहीं होता— वे कालक्रमसे अपनी पूरी ही बद्धायुका भोग करते हैं। दूसरे मनुष्य तिर्यंचोंके अखण्डायु होनेका नियम नहीं—वे अखण्डायु हो भी सकते हैं और नहीं भी। यह सूत्र उमास्वातिके 'औपपादिकचरमोत्तमदेहा ‡ ऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः' इस ५३वें सूत्रकी अपेक्षा बहुत कुछ सरल, स्पष्ट तथा अल्पाक्षरी है, इसमें उक्त सूत्र-जैसी जटिलता नहीं है।

इति श्रीप्रभाचंद्र-विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोध्यायः ॥२॥

'इस प्रकार श्री प्रभाचंद्र- विरचित तत्वार्थसूत्रमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।'

तीसरा अध्याय

रत्नप्रभाद्याः सप्त भूमयः ॥१॥

'रत्नप्रभा आदि सात भूमियाँ हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, महातमःप्रभा इन छह भूमियोंका संग्रह किया गया है; क्योंकि आगममें रत्न-प्रभाको आदि लेकर ये ही सब सात नरक-भूमियाँ वर्णित हैं। यह सूत्र उमास्वाति-तत्त्वार्थसूत्रके तृतीय अध्यायके प्रथम सूत्रके मूल आशयके साथ मिलता-जुलता है। उसमें 'घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः' और 'अधोऽधः' पदोंके द्वारा इन नरक-भूमियोंके सम्बन्धमें कुछ विशिष्ट एवं स्पष्ट कथन और भी किया है।

---

‡ श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमें 'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाः' ऐसा पाठ है जिसके द्वारा सभी चरमशरीरी तथा उत्तम पुरुषों को अखण्डायु बतलाया है। उसमें भी यह द्वितीय अध्यायका अन्तिम सूत्र है परन्तु इसका नम्बर वहां ५२ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तासु नारकाः सपंचदुःखाः ॥२॥

'उन सातों भूमियोंमें नारकी जीव रहते हैं और वे पाँच प्रकारके दुःखोंसे युक्त होते हैं।'

नारकी जीव शारीरिक, स्वसंक्लेशपरिणामज (मानसिक), क्षेत्रस्वभावज, परस्परोदीरित और असुरोदीरित इन पाँच प्रकारके दुःखोंसे निरन्तर पीडित रहते हैं। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा-जैसे ग्रंथोंमें इन्हीं दुखों का वर्णन है उमास्वातिके प्रायः २ से ५ तकके सूत्रोंका आशय इसमें संनिहित जान पड़ता है।

जम्बूद्वीपलवणोदादयोऽसंख्येयद्वीपोदधयः ॥३॥

'जम्बूद्वीप और लवणोदधिको आदि लेकर असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं।'

यह सूत्र और उमास्वातिका जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः' यह सूत्र नं० ७ दोनों एक ही आशयको लिये हुए हैं। एकमें द्वीप-समुद्रोंका 'शुभनामानः' विशेषण है तो दूसरेमें 'असंख्येय' विशेषण है।

तन्मध्ये लक्षयोजनप्रमः सचूलिको मेरुः ॥४॥

'उन द्वीप-समुद्रोंके मध्यमें लाख योजन-प्रमाण वाला चूलिका-सहित मेरु (पर्वत) है।'

उमास्वातिने 'तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो' इत्यादि सूत्रके द्वारा मेरुपर्वत को नाभिकी तरह मध्यस्थित बतलाते हुए उसका कोई परिमाण न देकर जम्बूद्वीपको लक्ष-योजन-प्रमाण विस्तारवाला बतलाया है, जबकि यहाँ जम्बूद्वीपका कोई परिमाण न देकर मेरुका ही परिमाण दिया है, जोकि चूलिकाके परिमाणको साथमें शामिल करके है। जम्बूद्वीप और मेरुपर्वत दोनों ही एक एक लाख योजनके हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिमवत्प्रमुखाः षट् कुलनगाः ॥ ५ ॥

'हिमवान्‌को आदि लेकर षट् कुलाचल हैं।'

यहाँ छहकी संख्याका निर्देश करनेसे 'प्रमुख' शब्दके द्वारा महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी शिखरी इन पांच कुलाचलोंका संग्रह किया गया है, क्योंकि आगममें हिमवान्-सहित छह पर्वतों का वर्णन है जो जम्बूद्वीपादिकमें स्थित हैं। उमास्वातिने ११ वें सूत्रमें उन सबका नाम-सहित संग्रह किया है।

तेषु पद्मादयो ह्रदाः ॥ ६ ॥

'उन कुलाचलों पर 'पद्म' आदि द्रह (तालाब) हैं।'

यहाँ 'आदि शब्दसे महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामके पांच द्रहोंका संग्रह किया गया है, जो शेष महाहिमवान् आदि कुलाचलोंपर स्थित हैं, और जिनका उमास्वातिने अपने १४ वें 'पद्ममहापद्म' आदि सूत्रमें उल्लेख किया है।

तन्मध्ये श्र्यादयो देव्यः ॥ ७ ॥

'उन द्रहोंके मध्यमें श्री आदि देवियाँ रहती हैं।'

यहां 'आदि' शब्दसे आगम-वर्णित ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी नामकी पांच देवियोंका संग्रह किया गया है, जिन्हें उमास्वातिने अपने १९ वें सूत्रमें द्रह-स्थित-कमलोंमें निवास करने वाली बतलाया है।

तेभ्यो* गंगादयश्चतुर्दश महानद्यः ॥ ८ ॥

'उन (द्रहों) से गंगादिक १४ महानदियाँ निकलती हैं।

---

*ग्रन्थप्रतिमें 'तस्माद्' पाठ है, जो अशुद्ध जान पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां १४ की संख्याके निर्देशके साथ 'आदि' शब्दसे आगमवर्णित सिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा, इन १३ नदियोंका संग्रह किया गया है। उमास्वातिने अपने 'गंगासिंधु' आदि सूत्र नं० २०† में इन सबका नामोल्लेख-पूर्वक संग्रह किया है। इसीसे वह सूत्र बड़ा हो गया है।

भरतादीनि वर्षाणि ॥ ९ ॥

'भरत आदि क्षेत्र हैं।'

यहां 'आदि' शब्दसे हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नामके छह क्षेत्रोंका संग्रह किया गया है। षट् कुलाचलोंसे विभाजित होनेके कारण जम्बूद्वीपके क्षेत्रोंकी संख्या सात होती है। यह सूत्र और उमास्वातिका १० वाँ 'भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि' सूत्र एक ही आशयके हैं।

त्रिविधा भोगभूमयः ॥ १० ॥

'भोग-भूमियाँ तीन प्रकारकी होती हैं।'

यहाँ जघन्य, मध्यम और उत्तम ऐसी तीन प्रकारकी भोगभूमियोंका निर्देश है। हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि, हरि-रम्यकक्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि और विदेहक्षेत्र-स्थित देवकुरु-उत्तरकुरुमें उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें यद्यपि इस प्रकारका कोई स्वतन्त्र सूत्र नहीं है परन्तु उसके 'एकद्वित्रिपल्योपम' आदि सूत्र नं० १९ और 'तथोत्तराः' नामक सूत्र नं०२० * में यह सब आशय संनिहित है।

---

† श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमें यह सूत्र ही नहीं है।

* श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमें ये दोनों ही सूत्र नहीं हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतैरावतेषु षट् कालाः ॥ ११ ॥

'भरत और ऐरावत नामके क्षेत्रोंमें छह काल वर्तते हैं।'

इस सूत्रका प्रायः वही आशय है जो उमास्वातिके 'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्' इस सूत्र नं०. २७† का है।

विदेहेषु सन्ततश्चतुर्थः ॥१२॥

'विदेहक्षेत्रोंमें सदा चौथा काल वर्तता है।'

इस आशयका कोई सूत्र उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें नहीं है। सर्वार्थसिद्धिकारने 'विदेहेषु संख्येयकालाः' सूत्र* की व्याख्या करते हुए 'तत्र कालः सुषमदुःषमान्तोपमः' इस व्याख्याके द्वारा वहाँ सदा चतुर्थ कालके होनेको सूचित किया है।

आर्या म्लेच्छाश्च नरः ॥१३॥

'मनुष्य आर्य और म्लेच्छ होते हैं।

यह सूत्र और उमास्वातिका 'आर्या म्लेच्छाश्च' सूत्र नं० ३६ एक ही आशयके हैं। इसमें 'नरः' पद 'नृ' शब्दका प्रथमाका बहुवचनान्तपद है, जो यहाँ अधिक नहीं किन्तु कथन-क्रमको देखते हुए आवश्यक जान पड़ता है।

त्रिषष्ठिशलाकापुरुषाः ॥१४॥

एकादशरुद्राः ॥१५॥

नवनारदाः ॥१६॥

चतुर्विंशतिकामदेवाः ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं।'
'ग्यारह रुद्र होते हैं।'
'नव नारद होते हैं।'
'चौबीस कामदेव होते हैं।'

इन चारों सूत्रोंके आशयका कोई भी सूत्र उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें नहीं है।

मनुष्यतिरश्चामुत्कृष्ट-जघन्यायुषी त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते† ॥८॥

'मनुष्य और तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तकी होती है।'

उमास्वातिके "नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तमुहूर्ते" और "तिर्यग्योनिजानां च" इन दो सूत्रों नं० ३८, ३९ में जो बात कही गई है वही यहाँ इस एक सूत्रमें वर्णित है—अक्षर भी अधिक नहीं हैं।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयोध्यायः ॥३॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचित तत्त्वार्थसूत्रमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।'

चौथा अध्याय

दशाऽष्टपंचभेदभावन-व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥१॥

'भवनवासियों, व्यन्तरों और ज्योतिषियोंके क्रमशः दश, आठ और पाँच भेद होते हैं।'

भवनवासी आदि देवोंकी यह भेद-गणना उमास्वातिके "दशाष्ट-पंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपन्नपर्यन्ताः' इस सूत्र नं० ३ में पाई जाती है।

---

† मुहूर्तौ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैमानिका द्विविधाः†कल्पजकल्पातीत‡भेदात् ॥२॥

'वैमानिक (देव) कल्पज और कल्पातीतके भेदसे दो प्रकारके होते हैं'।

– इस सूत्र-विषयके लिये उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें 'वैमानिकाः' और 'कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च' ऐसे दो सूत्र पाये जाते हैं।

सौधर्मादयः षोडश कल्पाः ॥३॥

'सौधर्म आदि सोलह कल्प हैं।'

इस सूत्रमें कल्पोंकी संख्या १६ निर्दिष्ट करने से 'आदि' शब्दके द्वारा ईशान आदि उन १५ स्वर्गोंका संग्रह किया गया है जिनके नाम उमास्वातिके दिगम्बर पाठानुसार १९ वें सूत्रमें दिये हैं।

ब्रह्मालया लौकान्तिकाः * ॥४॥

'लौकान्तिक (देव) ब्रह्मकल्पके निवासी होते हैं।'

यह सूत्र और उमास्वातिका 'ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः' सूत्र प्रायः एक ही हैं।

ग्रैवेयकाद्या अकल्पाः ॥५॥

'ग्रैवेयक आदि अकल्प हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामके उन आगमोदित विमानोंका संग्रह किया गया है जिनका उमास्वातिके भी उक्त १९ वें सूत्रमें उल्लेख है। उमास्वातिने भी 'प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः' इस सूत्रके द्वारा इन्हें 'अकल्प' सूचित किया है।

---

† धा। ‡ ता

* लोकान्तिकाः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्यतो देवनारकाणामुत्कृष्टेतरस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्साग-रायुताब्दाः † ॥६॥

'सामान्यतया देव और नारकोंकी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर और जघन्य स्थिति १० हजार वर्षकी है।'

उमास्वातिने 'दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्' इत्यादि अनेक सूत्रोंमें इसी आशयको वर्णित किया है। इस सूत्रका 'सामान्यतः' पद ख़ास तौरसे ध्यान देने योग्य है, और उससे विशेषावस्थामें किसी अपवादके होनेकी भी सूचना मिलती है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोध्यायः ॥४॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचित तत्वार्थसूत्रमें चौथा अध्याय पूर्ण हुआ।'

पांचवाँ अध्याय

पंचास्तिकायाः ॥१॥

'पाँच अस्तिकाय हैं।'

यहाँ अस्तिकायके लिये पाँचकी संख्याका निर्देश करनेसे आगमकथित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ऐसे पाँच द्रव्योंका संग्रह किया गया है। इनकी अस्तित्व और बहुप्रदेशत्व गुणोंके कारण 'अस्तिकाय'

---

† 'सागरप्रयुताब्दा:' यह ग्रन्थप्रतिका पाठ इसलिये ठीक नहीं है कि 'प्रयुत' शब्द १० लाखका वाचक होता है, उतनी जघन्य स्थितिका होना सिद्धान्तके विरुद्ध है। 'अयुत' का अर्थ १० हजार होता है, इसलिये उसीका प्रयोग ठीक जान पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्ञा है। उमास्वातिने इनका संग्रह 'अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः' और 'जीवाश्च' इन दो सूत्रों (नं० १, ३) में किया है।

नित्यावस्थिताः ॥२॥

'(पांचों अस्तिकाय) नित्य हैं और अवस्थित हैं।'

ये पाँचों द्रव्य अपने सामान्य-विशेषरूपको कभी छोड़ते नहीं, इसलिये नित्य हैं और अस्तिकायरूपसे अपनी पाँचकी संख्याका भी कभी त्याग नहीं करते—चार या छह आदि रूप नहीं होते—इसलिये अवस्थित हैं। उमास्वातिका 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' सूत्र इस सूत्रके साथ मिलता जुलता है।

रूपिणः पुद्गलाः ॥३॥

'पुद्गल रूपी होते हैं।'

पंचास्तिकायरूप द्रव्योंमेंसे पुद्गलोंको रूपी बतलानेका फलितार्थ यह होता है कि जीव, धर्म, अधर्म और आकाश ये चार द्रव्य अरूपी हैं—स्पर्श, रस, गंध और वर्णसे रहित अमूर्तिक हैं। यह सूत्र और उमास्वातिका चौथा सूत्र अक्षरसे एक ही हैं।

धर्मादेरक्रियत्वम् ॥४॥

'धर्म आदिके अक्रियत्व है।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे अधर्म और आकाशका संग्रह किया गया है, क्योंकि पंचास्तिकायमें धर्म द्रव्यके बाद ये ही आते हैं। ये तीनों द्रव्य क्रियाहीन हैं। जब ये क्रियाहीन हैं तब शेष जीव और पुद्गल द्रव्य क्रियावान् हैं, यह सूत्र-सामर्थ्यसे स्वयं अभिव्यक्त हो जाता है। उमास्वातिके 'निष्क्रियाणि च' सूत्रका और इसका एक ही आशय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवादेर्लोकाकाशेऽवगाहः ॥५॥

'जीवादिकका लोकाकाशमें अवगाह है।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे पुद्गल, धर्म, और अधर्मका संग्रह किया गया है—चारों द्रव्योंका आधार लोकाकाश है। आकाश स्वप्रतिष्ठित—अपने ही आधारपर स्थित—है, इसलिये उसका अन्य आधार नहीं है। यह सूत्र और उमास्वातिका १२ वाँ 'लोकाकाशेऽवगाहः' सूत्र प्रायः एक ही हैं।

सत्त्वं द्रव्यलक्षणम् ॥६॥

उत्पादादियुक्तं सत् ॥७॥

'द्रव्यका लक्षण सत्त्व (सत्काभाव) है।'

'उत्पाद आदि (व्यय, ध्रौव्य)से जो युक्त है वह सत् है।'

ये सूत्र उमास्वातिके 'सद्द्रव्यलक्षणं' और 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्' इन सूत्रोंके साथ पूर्ण सामंजस्य रखते हैं और एक ही आशयको लिये हुए हैं।

सहक्रमभाविगुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥८॥

'द्रव्य सहभावि-गुणों तथा क्रमभावि-पर्यायों वाला होता है।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' सूत्रसे कुछ विशेषताको लिये हुए है। इसमें गुणका स्वरूप सहभावी और पर्यायका क्रमभावी भी बतला दिया है।

कालश्च ॥९॥

'काल भी द्रव्य है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सूत्र और उमास्वातिका ३९वाँ सूत्र अक्षरसे एक हैं* ।

अनन्तसमयश्च ॥१०॥

'(कालद्रव्य) अनन्त समय (पर्याय) वाला है ।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'सोऽनन्तसमयः' सूत्रके साथ बहुत मिलता जुलता है और एक ही आशय को लिये हुए है ।

गुणानामगुणत्वम् ॥११॥

'गुणोंके गुणत्व नहीं होता ।'

गुण स्वयं निर्गुण होते हैं । गुणोंमें भी यदि अन्य गुणोंकी कल्पना की जाय तो वे गुणी, गुणवान् एवं द्रव्य हो जाते हैं, फिर द्रव्य और गुणमें कोई विशेषता नहीं रहती और अनवस्था भी आती है । यह सूत्र उमास्वातिके 'द्रव्याश्रयाः निर्गुणा गुणाः' इस सूत्र नं० ४१ (श्वे० ४०) के समकक्ष है । 'द्रव्याश्रयाः' पदका आशय इससे पूर्व ८वें सूत्रमें 'सहभावी' विशेषणके द्वारा व्यक्त कर दिया गया है ।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचित तत्त्वार्थसूत्रमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।'

छठा अध्याय

त्रिकरणैः कर्म योगः ॥१॥

'तीन करणोंसे (मन-वचन-कायसे) की जाने वाली क्रियाको योग कहते हैं ।'

---

* श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमें इसके अनन्तर 'इत्येके' जुड़ा हुआ है और इसे ३८ नम्बरपर दिया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्ताप्रशस्तौ ॥२॥

पुण्यपापयोः [हेतू] ॥३॥

'योग प्रशस्त अप्रशस्त दो हैं।'

'प्रशस्त योग पुण्यका अप्रशस्त योग पापका (आस्रव-) हेतु है।'

उमास्वातिके 'शुभः पुण्यस्याऽशुभः पापस्य' सूत्रका अथवा श्वे० मान्यताके अनुसार 'शुभः पुण्यस्य' अशुभः पापस्य' ऐसे दो सूत्रोंका जो आशय है वही इन सूत्रोंका है।

गुरुनिन्हवादयो ज्ञानदर्शनावरणयोः* ॥४॥

'गुरुनिन्हव (गुरुका छिपाना) आदि ज्ञानावरण दर्शनावरण के हेतु हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे मात्सर्य, अन्तराय, आसादन, उपघात आदि उन हेतुओंका ग्रहण करना चाहिये जो आगममें वर्णित हैं, और जिनका उमास्वातिने 'तत्प्रदोषनिन्हव०' नामके सूत्रमें उल्लेख किया है।

दुःखव्र†त्यनुकंपाद्या असाता‡सातयोः ॥५॥

'दुःख आदि असाताके, व्रत्यनुकम्पा आदि साताके हेतु हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे असातावेदनीयके आस्रवहेतुओंमें शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, परिदेवनका और साता वेदनीयके हेतुओंमें दान, सराग-संयम, क्षमा, शौचादिका संग्रह किया गया है। उमास्वातिके दो सूत्र नं० ११, १२ का जो आशय है वही इसका समझना चाहिये। यहाँ सूचना-रूपसे बहुत ही संक्षिप्त कथन किया गया है।

---

* वरणादयः।

† व्रू। ‡ द्याः साता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल्यादिविवादो (द्यवर्णवादो?) दर्शनमोहस्य‡ ॥६॥ *

'केवली आदिका विवाद (अवर्णवाद?)—उन्हें झूठे दोष लगाना—दर्शनमोहका हेतु है।'

यहाँ 'आदि' शब्दके द्वारा श्रुत, संघ, धर्म और देवके अवर्णवादका भी संग्रह किया गया है। यह सूत्र उसी आशयको लिये हुए जान पड़ता है जो उमास्वातिके 'केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य' सूत्रका है।

कषायजनिततीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥७॥

'कषायसे उत्पन्न हुआ तीव्र परिणाम चारित्रमोह का हेतु है।'

यह सूत्र और उमास्वातिका 'कषायोदयात्तीव्र०' नामका सूत्र प्रायः एक ही हैं—मात्र 'उदयात्' और 'जनित' शब्दोंका अन्तर है।

बह्वारंभपरिग्रहाद्या नारकाद्यायुष्कहेतवः ॥८॥

'बहु आरंभ और बहुपरिग्रह आदि नारकादि आयुओंके हेतु हैं।'

इस सूत्रमें दो जगह 'आद्य' शब्दका प्रयोग करके नारक आदि चारों ही गतियोंके जीवोंका और उनकी आयुके आस्रव-हेतुओंका एकत्र संग्रह किया गया हैं; परन्तु दूसरी-

---

† कै। ‡ अ। * यहां मूल पुस्तकमें नं० ७ दिया है जो गलत है; क्योंकि इससे पहिले 'चतुर्विंशतिकामदेवाः' नामका एक सूत्र पुनः गलतीसे नं० ६ पर लिखा गया था, जिसे निकाल देनेका संकेत किया हुआ है; परन्तु उसे निकालनेपर आगेके नम्बरोंको बदलना चाहिये था जिन्हें नहीं बदला। इसलिये इस अध्यायके अगले सब नम्बर ग्रन्थप्रतिमें एक एककी वृद्धिको लिए हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गतियोंका एक एक भी कारण सूचना एवं दूसरे कारणोंको ग्रहण करनेकी प्रेरणारूपसे साथमें नहीं दिया है, इससे यह सूत्र आवश्यकतासे कहीं अधिक संक्षिप्त और अजीबसा ही जान पड़ता है। यह विषय उमास्वातिने १५ से २१ तक सात सूत्रोंमें वर्णित किया है।

योगवक्रताद्या अशुभ†नाम्नः ॥९॥

'योगकी—मन वचन कायकी—वक्रता आदि अशुभ नामके आस्रवहेतु हैं।'

यहां 'आद्याः' पद बहुवचनान्त होने से उसके द्वारा उमास्वातिके २२वें सूत्रमें निर्दिष्ट एकमात्र 'विसंवादन(अन्यथाप्रवर्तन)' का ही ग्रहण नहीं किया जा सकता बल्कि दूसरे कारणोंका भी ग्रहण होना चाहिये। उन कारणोंमें सर्वार्थसिद्धिकारने मिथ्यादर्शन, पैशून्य, अस्थिरचित्तता, कूटमानतुलाकरणको भी बतलाया है और लिखा है कि सूत्रमें प्रयुक्त हुए 'च' शब्दसे उनका ग्रहण करना चाहिए।

तद्वैपरीत्यं शुभस्य ॥१०॥

'अशुभनामके आस्रवहेतुओंसे विपरीत—योगकी सरलता और अनुकूलप्रवर्तनादि—शुभ नामके आस्रव हेतु हैं।'

उमास्वातिका 'तद्विपरीतं शुभस्य' सूत्र और यह सूत्र दोनों एक ही जैसे हैं।

दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशभावनास्तीर्थकरत्वस्य ॥११॥

'दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाएँ तीर्थंकर नामके आस्रवकी हेतु हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे आगमप्रसिद्धविनयसम्पन्नता आदि उन १५ भावनाओंका संग्रह किया गया है जिनका उमास्वातिने अपने २४ वें सूत्र में नामोल्लेखपूर्वक संग्रह किया है।

---

† द्याशुभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मविकत्थ†नाद्या नीचैर्गोत्रस्य ॥१२॥

आत्मश्लाघा (अपनी प्रशंसा) आदि नीचगोत्रके हेतु हैं।

यहाँ 'आदि' शब्दसे परनिन्दा, सद्गुणोंका उच्छादन और असद्गुणोंका उद्भावन, ऐसे तीन हेतुओंका संग्रह किया गया जान पड़ता है, जो उमास्वातिके 'परात्मनिन्दाप्रशंसे' इत्यादि सूत्रमें स्पष्टतया उल्लेखित मिलते हैं।

तद्व्यत्ययो महतः ॥१३॥

नीचगोत्रके आस्रवहेतुओंसे विपरीत—आत्मनिन्दादिक—ऊँच गोत्रके आस्रव-हेतु हैं।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य' सूत्रके आशयके साथ मिलता जुलता है।

दानादिविघ्नकरणमंतरायस्य ॥१४॥

'दानादिमें विघ्न करना अन्तरायकर्मके आस्रवका हेतु है।

यहाँ 'आदि' शब्दसे लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य का ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि अन्तरायकर्मके दानान्तराय आदि पाँच ही भेद हैं। इस सूत्रमें उमास्वातिके सूत्रसे सिर्फ 'दानादि' शब्द अधिक हैं।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठो‡ध्याय ॥६॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरचित तत्त्वार्थसूत्रमें छठा अध्याय समाप्त हुआ।'

सातवाँ अध्याय

हिंसादिपंचविरतिर्व्रतम् ॥१॥

'हिंसादिपंचकसे विरक्त (निवृत्त) होना व्रत है।'

हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह ये पंच पाप कहलाते हैं।

---

†विकथ। ‡ षष्ठिमो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनसे निवृत्त होना ही 'व्रत' है, और इसीलिये व्रतके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ऐसे पाँच भेद हैं। यह सूत्र और उमास्वातिका 'हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं' सूत्र दोनों एक ही टाइप और आशयके हैं। उमास्वातिने प्रसिद्ध पाँचों पापोंके नाम दिये हैं, यहाँ हिंसाके साथ शेषका 'आदि' शब्दके द्वारा संग्रह किया गया है।

महाऽणु†भेदेन तद्द्विविधम् ॥२॥

'वह व्रत(व्रतसमूह) महाव्रत और अणुव्रतके भेदसे दो प्रकारका है।'

यह सूत्र उमास्वातिके दूसरे सूत्र 'देशसर्वतोऽणुमहती'के समकक्ष है और उसी आशयको लिये हुए है। इसके और पूर्व सूत्रके अनुसार महाव्रतों तथा अणुव्रतोंकी संख्या पाँच पाँच होती है।

तद्दार्ढ्याय भावनाः पंचविंशतिः ॥३॥

'उन(व्रतों)की दृढ़ताके लिये पच्चीस भावनाएँ हैं।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच' सूत्र नं० ३ के समकक्ष है और उसीके आशयको लिये हुए है। वहाँ प्रत्येक व्रतकी पाँच पाँच भावनाएँ बतलाई हैं, तब यहाँ उन सबकी एकत्र संख्या पच्चीस देदी है। दिगम्बर पाठानुसार उमास्वातिके अगले पाँच सूत्रोंमें उनके नाम भी दिये हैं, परन्तु यहाँ संख्याके निर्देशसे उनका संकेतमात्र किया गया है। श्वेताम्बर सूत्रपाठमें भी ऐसा ही किया गया है—नामोंवाले अगले पाँच सूत्र नहीं दिये।

मैत्र्यादयश्चतस्रः ॥४॥

'मैत्री आदि चार भावनाएँ और हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे आगमनिर्दिष्ट प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य

---

† ऽनु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामकी तीन भावनाओंका संग्रह किया गया है। मैत्री-सहित ये ही चार प्रसिद्ध भावनाएँ हैं। उमास्वातिने 'मैत्रीप्रमोद०' नामक सूत्रमें इन चारोंका नाम-सहित संग्रह किया है।

श्रमणा†नामष्टाविंशतिर्मूलगुणाः‡ ॥५॥

'श्रमणोंके अट्ठाईस मूलगुण हैं।'

इस आशयका कोई सूत्र उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें नहीं है। इसमें जैन साधुओंके मूल गुणोंकी जो २८ संख्या दी है उसमें मूलाचारादि प्राचीन दिगम्बर ग्रंथोंके कथनानुसार अहिंसादि पंच महाव्रत, ईर्यादि पंच समितियाँ, पाँचों इन्द्रियोंका निरोध, सामायिकादि छह आवश्यकक्रियाएँ, अस्नान, भूशयन, केशलोंच, अचेलत्व (नग्नत्व), एकभुक्ति, ऊर्ध्वभुक्ति (खड़े होकर भोजन करना) और अदन्तघर्षण नामके गुणोंका समावेश है।

श्रावकाणामष्टौ ॥६॥

'श्रावकोंके मूलगुण आठ हैं।'

आठ मूल गुणोंके नामोंमें यद्यपि आचार्योंमें कुछ मत-भेद पाया जाता है, जिसके लिये अनुवादकका लिखा हुआ 'जैनाचार्योंका शासन-भेद' नामका ग्रंथ देखना चाहिये। परन्तु यहाँ चूँकि व्रती श्रावकोंका अधिकार है इसलिये आठ मूलगुणोंमें स्वामी समन्तभद्र-प्रतिपादित पाँच अणुव्रतों और मद्य-माँस-मधुके त्यागको लेना चाहिये। इस आशयका भी कोई सूत्र उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें नहीं है।

शीलसप्तकं च ॥७॥

'सात शील भी श्रावकोंके गुण हैं।'

सप्त शीलके नामोंमें भी आचार्योंमें परस्पर कुछ मत भेद है *। उमास्वातिने अपने 'दिग्देशानर्थदण्ड'० नामक सूत्रमें उनके नाम दिग्विरति,

---

†श्रवणा। ‡मूलगुणा। * देखो जैनाचार्योंका शासनभेद, गुणव्रत और शिक्षाव्रत प्रकरण पृ० ४१ से ६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोग-परिमाण, अतिथिसंविभाग दिये हैं जब कि कुन्दकुन्दाचार्यने चारित्र-प्राभृतमें देशव्रतका ग्रहण न करके सप्तम स्थान पर 'सल्लेखना' का विधान किया है। इसी तरह और भी थोड़ा थोड़ा मतभेद है। यहाँ संभवतः कुन्दकुन्द - प्रतिपादित गुणव्रत-शिक्षाव्रतात्मक सप्त शीलोंका ही उल्लेख जान पड़ता है; क्योंकि आगे संन्यास (सल्लेखना) का कोई अलग विधान न करके १० वें सूत्रमें उसके अतीचारोंका उल्लेख किया गया है।

शंकाद्याः † सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥८॥

'शंका आदि सम्यग्दर्शनके अतीचार हैं।'

यहाँ अतीचारोंकी संख्याका निर्देश न होनेसे 'आदि' शब्दद्वारा जहाँ उमास्वाति-सूत्र-निर्दिष्ट काँक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टि-संस्तव इन चार अतीचारोंका ग्रहण किया जासकता है वहाँ सम्यग्दर्शनके निःशंकित अंगको छोड़कर शेष सात अंगोंके प्रतिपक्षभूत काँक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना नामके दोषों—अतीचारों—का भी ग्रहण किया जासकता है। सर्वार्थ-सिद्धिमें अष्ट अंगोंके प्रतिपक्षभूत आठ अतीचार होने चाहियें, ऐसी शंका भी उठाई गई है और फिर उसका समाधान यह कहकर कर दिया है कि ग्रन्थकारने व्रत-शीलादिकके भी पाँच पाँच ही अतीचारोंका अपना क्रम रक्खा है, इसलिये सम्यग्दर्शनके शेष अतीचारोंका प्रशंसा-संस्तवमें अन्तर्भाव कर लेना चाहिये। यहाँ 'शंकाद्याः' पदपर आठका अंक दिया है, इससे भी आठ अतीचारोंका ही ग्रहण जान पड़ता है।

बंधादयो व्रतानाम् ॥९॥

'बंध आदिक व्रतोंके अतीचार हैं।'

यहाँ 'व्रतानाम्' पदके द्वारा अहिंसादिक सब व्रतोंका और 'बंधादयो' पदमें प्रयुक्त 'आदि' शब्दके द्वारा उनके पृथक् पृथक्

---

† द्या।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतीचारोंका संग्रह किया गया है। परन्तु उनकी संख्याका किसी रूपमें भी उल्लेख नहीं किया है। यह सूत्र बहुत ही संक्षिप्त—सूचनामात्र है। इसमें उमास्वातिके २५ से ३२ अथवा ३६ नम्बर तक सूत्रोंके विषयका समावेश किया जा सकता है *।

मित्रस्मृत्याद्याः संन्यासस्य ‡ ॥१०॥

'मित्रस्मृति आदि संन्यास (सल्लेखना) के अतीचार हैं।'

यहाँ भी अतीचारोंकी संख्याका कोई निर्देश नहीं किया। 'आदि' शब्दसे सुखानुबन्ध, निदान नामके अतीचारोंका और क्रम-व्यतिक्रम करके यदि ग्रहण किया जाय तो जीविताकाँक्षा तथा मरणाकाँक्षाका भी ग्रहण किया जा सकता है, जिन सबका उमास्वातिके 'जीवितमरणाशंसा' इत्यादि सूत्रमें उल्लेख है।

स्वपरहिताय स्वस्यातिसर्जनं दानम् ॥११॥

'अपने और परके हितके लिये अपनी वस्तुका त्याग करना दानहै।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं' इस सूत्रके समकक्ष है—दोनोंका आशय एक ही है। इस सूत्रका 'स्वपरहिताय' पद उमास्वातिके 'अनुग्रहार्थं' पदसे अधिक स्पष्ट जान पड़ता है।

इति प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमोध्यायः ॥७॥

'इस प्रकार प्रभाचन्द्रविरचित तत्त्वार्थसूत्रमें सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

आठवां अध्याय

मिथ्यादर्शनादयो बंधहेतवः ॥१॥

'मिथ्यादर्शन आदि बन्धके कारण हैं।'

---

* श्वेताम्बरीय सूत्रपाठके अनुसार ये सूत्र नं० २० से प्रारंभ होते हैं और ३१ तक हैं।

‡ द्या स।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ 'आदि' शब्दसे आगम-कथित उन अविरत, प्रमाद, कषाय और योग नामके बन्धहेतुओंका संग्रह किया गया है जिनका उमास्वातिने भी अपने इसी अध्यायके पहले सूत्रमें नामनिर्देशपूर्वक संग्रह किया है।

चतुर्धा बन्धाः ॥२॥

'बन्ध चार प्रकारका होता है।'

यहाँ चारकी संख्याका निर्देश करनेसे आगमनिर्दिष्ट प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश नामके चारों बन्धोंका संग्रह किया गया है। और इसलिये यह सूत्र और उमास्वातिका 'प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः' सूत्र दोनों एक ही आशयको लिये हुए हैं।

मूलप्रकृतयोऽष्टौ ॥३॥

'मूल प्रकृतियाँ आठ हैं।'

आगम-कथित कर्मोंकी मूल आठ प्रकृतियाँ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम और गोत्र हैं, और इसलिये इस सूत्रका वही आशय है जो उमास्वातिके 'आद्यो ज्ञानदर्शनावरण' इत्यादि सूत्रका है।

उत्तरा अष्ट†चत्वारिंशच्छतम्‡ ॥४॥

'उत्तर प्रकृतियाँ एकसौ अड़तालीस हैं।'

ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २८, आयुकी ४, नामकी ९३, गोत्रकी २ और अन्तरायकी ५ प्रकृतियाँ मिलकर उत्तर प्रकृतियोंकी संख्या १४८ होती है। उमास्वातिने मूल प्रकृतियोंके नामाऽनन्तर उत्तर प्रकृतियोंकी संख्याका निर्देशक जो सूत्र 'पंचनवद्व्यष्टाविंशति' इत्यादि दिया है उसमें नामकर्मकी उत्तर-प्रकृतियोंकी संख्या ४२ बतलाते हुए उत्तरप्रकृतियोंकी कुल संख्या ९७

---

† उत्तराष्ट। ‡ त्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दी है। नामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंको भी शामिल करके उत्तर-प्रकृतियोंकी कुल संख्या १४८ होजाती है। उन्हीं सब उत्तर-प्रकृतियोंका यहाँ निर्देश है।

ज्ञानावरणादित्रयस्यांतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटी-कोटयः पराध्या(परा?)स्थितिः ॥५॥

'ज्ञानावरणादि तीन कर्मोंकी और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरकी है।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'आदितस्तिसृणामन्तरायस्य' इत्यादि सूत्रके समकक्ष है और उसी आशयको लिये हुए है।

मोहनीयस्य सप्ततिः ॥६॥

'मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरकी है'।

उमास्वातिके सूत्रमें 'सप्ततिः' पद पहले और 'मोहनीयस्य' पद बादमें है।

त्रयस्त्रिंशदे*वायुषः ॥७॥

'आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस ही सागरकी है।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः' सूत्रके समान है। इसमें प्रयुक्त हुआ 'एव' शब्द कोटी-कोटिके निवृत्यर्थ जान पड़ता है।

नामगोत्रयोर्विंशतिः ‡ ॥८॥

'नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडा-कोडी सागरकी है।

यह सूत्र उमास्वातिके 'विंशतिर्नामगोत्रयोः' सूत्रके बिल्कुल

---

* है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समकक्ष है। परन्तु यह सूत्र नम्बर ७ पर होना चाहिये; क्योंकि ८ वें नम्बरपर होनेके कारण इसमें वर्णित स्थिति पूर्व सूत्रके सम्बन्धानुसार २० सागरकी हो जाती है—२० कोडाकोडी सागरकी नहीं रहती—और यह सिद्धान्त-शास्त्रके विरुद्ध है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे अष्टमोध्यायः ॥८॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र-विरिचित तत्त्वार्थसूत्रमें आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

नववाँ अध्याय

गुप्त्यादिना संवरः ॥१॥

'गुप्ति आदिके द्वारा संवर (कर्मास्रवका निरोध) होता है।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र नामके आगमकथित संवर-भेदोंका उनके उपभेदों-सहित संग्रह किया गया है, और इसलिये इस सूत्रका विषय बहुत बड़ा है। उमास्वाति-का 'स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चरित्रैः' नामका सूत्र इसी आशयका स्पष्टतया व्यंजक है। उनके तत्त्वार्थ-सूत्रमें गुप्ति आदिके उप-भेदोंका भी अलग अलग सूत्रोंमें निर्देश किया गया है, जब कि यहाँ वैसा कुछ भी नहीं है।

तपसा निर्जराऽपि ॥२॥

'तपसे निर्जरा भी होती है।'

यह सूत्र और उमास्वातिका दूसरा सूत्र दोनों प्रायः एक ही हैं—वहाँ 'च' शब्दका प्रयोग है तब यहां उसके स्थानपर 'अपि' शब्दका प्रयोग है। अर्थमें कोई भेद नहीं। तपसे संवर और निर्जरा दोनों ही होते हैं, यह 'च' और 'अपि' शब्दोंके प्रयोगका अभिप्राय है।'

उत्तमसंहननस्यान्तर्मुहूर्तावस्थायि ध्यानम् ॥३॥

'उत्तमसंहनन वालेके ध्यान अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अवस्थित रहने वाला होता है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान अन्तरङ्ग तपका एक भेद है, वह ज्यादासे ज्यादा अन्तर्मुहूर्त—एक मुहूर्त पर्यन्त—ही स्थिर रहने वाला होता है, और वह भी उत्तम संहनन वालेके। हीन संहनन वालेका ध्यान किसी भी विषयपर एक साथ इतनी देर तक नहीं ठहर सकता। उमास्वातिका 'उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्' यह २७वाँ* सूत्र भी इसी आशयका हैं। विशेषता इतनी ही है कि उमास्वातिने 'एकाग्रचिन्तानिरोधः' पदके द्वारा ध्यानका स्वरूप भी साथमें बतला दिया है।

तच्चतुर्विधम् ॥४॥

'वह ध्यान चार प्रकारका है।'

यहाँ चारकी संख्याका निर्देश करनेसे ध्यानके आगमप्रसिद्ध आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ऐसे चारों भेदोंका संग्रह किया गया है। उमास्वातिका इसके स्थानपर 'आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि' सूत्र है, जो ध्यानके नामोंके स्पष्ट उल्लेखको लिए हुए है।

आद्ये संसारकारणे ॥५॥

परे मोक्षस्य ॥६॥

'पहले दो (आर्त्त, रौद्र) ध्यान संसारके कारण हैं।'

'दूसरे दो (धर्म्य, शुक्ल) ध्यान मोक्षके कारण हैं।'

उमास्वातिने इन दोनों सूत्रोंके स्थानपर 'परे मोक्षहेतू' नामका एक ही सूत्र रक्खा है और उसके द्वारा दूसरे दो ध्यानोंको मोक्षका हेतु बतलाया है, जिसकी सामर्थ्यसे पहले दो ध्यान स्वतः ही संसारके हेतु होजाते हैं। यहाँ स्पष्टतया संसार और मोक्षके हेतुओंका अलग अलग निर्देश कर दिया है।

पुलाकाद्याः पंच निर्ग्रन्थाः ॥७॥

'पुलाक आदि पांच निर्ग्रन्थ हैं।'

---

* श्वेताम्बरीय सूत्र-पाठमें 'ध्यानम्' तक के अंशको २७ वाँ सूत्र और 'आमुहूर्तात्' को २८ वाँ सूत्र बतलाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ पाँचकी संख्याका निर्देशपूर्वक 'आदि' शब्दसे आगमप्रसिद्ध बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक नामके चार निर्ग्रन्थोंका संग्रह किया गया है। उमास्वातिने 'पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः' इस सूत्रमें पाँचों का स्पष्ट नामोल्लेख किया है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे नवमोध्यायः ॥९॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचित तत्त्वार्थसूत्रमें नववाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

दसवाँ अध्याय

मोहक्षये घातित्रयापनोदात्केवलम् ॥१॥

'मोहनीय कर्मका क्षय होनेपर तीन घातिया कर्मोंके—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायके—विनाशसे केवलज्ञान होता है।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्' इस प्रथम सूत्रके बिलकुल समकक्ष है। दोनों एक ही आशयको लिये हुए हैं।

अशेषकर्मक्षये मोक्षः ॥२॥

'सब कर्मोंका क्षय होनेपर मोक्ष होता है।'

इस सूत्रके स्थानपर उमास्वातिका दूसरा सूत्र 'बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ❀' है जिसमें 'बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां' यह कारण-निर्देशात्मक पद अधिक है। और उसके द्वारा यह सूचित किया गया है कि अशेष कर्मोंका विनाश बन्धके हेतुओंके अभाव (संवर) और संचित कर्मोंकी निर्जरासे होता है।

तत ऊर्ध्वं गच्छत्या† लोकांतात् ॥२॥

❀श्वे० सूत्रपाठमें यह सूत्र दो सूत्रोंमें विभक्त है। इसका पहला पद दूसरा सूत्र और शेष दो पद 'विप्रमोक्षो' के स्थानपर 'क्षयो' पदकी तब्दीलीके साथ तीसरा सूत्र है। † न्त्या।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'तत्पश्चात् (मोक्षके अनन्तर) मुक्त जीव लोकके अन्त तक गमन करता है।'

यह सूत्र उमास्वातिके पाँचवें सूत्र 'तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्' के बिलकुल समकक्ष तथा एकार्थक है और उससे इसमें तीन अक्षर कम हैं।

ततो न गमनं धर्मास्तिकायाभावात्‡ ॥४॥

'लोकके अन्तिम भागके आगे—अलोकमें गमन नहीं है, क्योंकि वहां धर्मास्तिकायका अभाव है।'

यह सूत्र उमास्वातिके 'धर्मास्तिकायाभावात्' सूत्रके समकक्ष है—मात्र 'ततो न गमनं' पदोंकी विशेषताको लिये हुए है, जो अर्थको स्पष्ट करते हैं।

क्षेत्रादिसिद्धभेदाः साध्याः ॥५॥

'क्षेत्र आदिके द्वारा सिद्धोंके भेद साध्य हैं—विकल्पनीय हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दसे उन आगमोदित काल, गति, लिंग, तीर्थ, प्रत्येकबोधित, बुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व भेदोंका संग्रह किया गया है जिनके द्वारा सिद्धोंमें नयविवक्षासे विकल्प किया जाता है—उन्हें भेदरूप माना जाता है—और जिनका उल्लेख उमास्वातिने अपने 'क्षेत्रकालगति...बहुत्वतः साध्याः' सूत्रमें किया है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचंद्राचार्यविरचिते ❀ तत्त्वार्थसारे सूत्रे दशमोध्यायः ॥१०॥

इति जिनकल्पिसूत्रं× समाप्तम् ॥

'इस प्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्राचार्य-विरचित तत्त्वार्थसार सूत्रमें दसवाँ अध्याय पूरा हुआ।'

'इस प्रकार जिनकल्पी सूत्र समाप्त हुआ।'

---

‡ कायत्वात्। ❀ विविरचिते। × जिनकल्पीसूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित ... ... उसके पूर्व
लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे
प्रतिदिन दण्ड देना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi